

महाराष्ट्र राज्य व अन्य

बनाम

रविप्रकाश बाबुलालसिंग परमार व अन्य

31 अक्टूबर, 2006

{एस.बी सिन्हा और दलवीर भंडारी जे.जे.}

प्रशासनिक व्यवस्था:

अर्ध न्यायिक निकाय:

जाति जांच समिति- जाति प्रमाण पत्र को रद्द करना- समिति द्वारा प्रमाण पत्र की जांच कर वैधता तय करना-अनुज्ञेय की- अनुमति: अनुज्ञेय जांच समिति एक अर्ध-न्यायिक निकाय है और एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए स्थापित की गई है- किसी मामले में पेश किये जाने वाले दस्तावेज केवल दस्तावेजी साक्ष्य तक ही सिमित नहीं है-इसमें मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता होती है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश अधिनियम, 1976-महाराष्ट्र अनुसूचित जाति, जनजाति, गैर अधिसूचित जनजातियां विमुक्त जाति, घुमंतू जनजातियां, अन्य पिछड़ा वर्ग व विशेष पिछड़ा वर्ग जारी करने और सत्यापन का विनियमन जाति प्रमाण पत्र अधिनियम, 2000.

साक्ष्य- अर्ध न्यायिक निकाय द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले साक्ष्य की प्रकृति पर चर्चा की गई।

न्यायिक संयम:

न्यायाधीशों की व्यापक टिप्पणियाँ - उच्च न्यायालय की टिप्पणी कि जाति जांच का काम प्रशिक्षित न्यायिक अधिकारियों को सौंपा जाना चाहिए, न कि ऐसे नौकरशाहों को, जो सही परिप्रेक्ष्य में साक्ष्य की विवेचना करने के लिए कानूनी रूप

से प्रशिक्षित नहीं हैं - रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री के बिना इस तरह की व्यापक टिप्पणियाँ अनुचित हैं - न्यायाधीशों को ऐसी टिप्पणियाँ करने से पहले संयम बरतना चाहिए, जिनका दूरगामी प्रभाव हो-भारत का संविधान, 1950 अनुच्छेद 235

न्याय प्रशासन:

न्याय प्रदान करने वाली प्रणाली - पक्षकार द्वारा न्यायालय से मामले को उच्च न्यायालय में वापस न भेजने का आग्रह करने वाले पत्रों की प्राप्ति - प्रतिपादित: जब मामला निर्णय के लिए लंबित हो न्यायाधीशों को पत्र लिखने की ऐसी प्रथा निंदनीय है।

प्रतिवादी ने दावा किया कि वह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश अधिनियम, 1976 में परिकल्पित ठाकुर समुदाय से संबंधित अनुसूचित जनजाति का सदस्य है। उसने उसे जारी किए गए एसटी प्रमाण पत्र के आधार पर विभिन्न संस्थानों में नियुक्तियां और प्रवेश प्राप्त किया।

माधुरी पटेल बी केस' के संदर्भ में गठित जाति जांच समिति ने राय दी कि वह उक्त समुदाय से नहीं हैं और वास्तव में क्षत्रिय ठाकुर जाति से हैं, जिसके बाद उनका एसटी प्रमाणपत्र रद्द कर दिया गया। अपीलीय प्राधिकार ने जांच समिति के आदेश को बरकरार रखा। प्रतिवादी ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए रिट याचिका स्वीकार कर ली कि जांच समिति को यह जांच करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है कि वह क्षत्रिय ठाकुर जाति के थे और समिति केवल दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर ही अपनी संतुष्टी कर सकेगी और कोई मौखिक साक्ष्य स्वीकार्य नहीं होगा। उच्च न्यायालय ने आगे निर्देश दिया कि जाति जांच का काम नौकरशाहों को नहीं बल्कि प्रशिक्षित न्यायिक अधिकारियों को सौंपा जाना चाहिए और इन समितियों को संविधान के अनुच्छेद

235 के नियंत्रण और पर्यवेक्षण और दायरे में लाया जाना चाहिए। आदेश से दुखी होकर, राज्य ने वर्तमान अपील दायर की।

न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए मामले को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से विचार के लिए उच्च न्यायालय को भेज दिया। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

1. जाति जांच समिति एक अर्ध-न्यायिक निकाय है। इसकी स्थापना एक विशेष उद्देश्य के लिए की गई है। यह एक सामाजिक और संवैधानिक उद्देश्य को पूरा करता है और संविधान के साथ धोखाधड़ी को रोकने के लिए गठित किया गया है। यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों से बाध्य नहीं हो सकता है, लेकिन वरिष्ठ न्यायालयों के लिए यह निर्देश जारी करना सही नहीं होगा कि उन्हें साक्ष्य का विवेचन कैसे करना चाहिए। अर्ध-न्यायिक निकाय के समक्ष किसी मामले में पेश किए जाने वाले साक्ष्य को केवल दस्तावेजी साक्ष्य स्वीकार करने तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता है। इसके लिए मौखिक साक्ष्य लेना आवश्यक हो सकता है। इसके अलावा, पेश किए जाने वाले साक्ष्य की प्रकृति हर मामले में अलग-अलग होगी। साक्ष्य प्रस्तुत करने के किसी पक्ष के अधिकारों में कटौती नहीं की जा सकती। यह कहना एक बात है कि एक अर्ध-न्यायिक निकाय को कानून में उसके सामने पेश किए गए सबूतों की विवेचना कैसे करनी चाहिए, लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि उसे मौखिक साक्ष्य पेश करने की बिल्कुल भी अनुमति नहीं देनी चाहिए। इसके अलावा यह सुझाव देना भी उचित नहीं होगा कि ऐसे सभी निकायों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 235 के दायरे में लाया जाना चाहिए या केवल न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

(111-ई.एच)

2. न्यायाधीश के रूप में ऐसी टिप्पणी करने से संयम बरतना चाहिए, जिसका दुरगामी प्रभाव हो। ऐसे निर्देश उस मामले में जारी नहीं किये जा सकते थे, जहां राज्य को नहीं बुलाया गया था कि इस पर टिप्पणी करें। जाति जांच समितियों के कामकाज के संबंध में कोई अनुभवजन्य अध्ययन नहीं किया गया था। इस प्रकार, रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री के बिना इस तरह की व्यापक टिप्पणियाँ अनुचित थी। वे काफी हद तक माधुरी पाटिल मामले में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के विपरीत और असंगत हैं। (112-ए-बी)

कुमारी माधुरी पाटिल और अन्य बनाम अतिरिक्त, आयुक्त, जनजाति विकास और अन्य, (1994), 6 एससीसी 241, संदर्भित।

3. संविधान निर्माताओं ने नागरिकों के बीच समानता पर जोर दिया है। भारत का संविधान सुरक्षात्मक भेदभाव और आरक्षण का प्रावधान करता है, ताकि वंचित समूह को अगड़े समुदाय के समान मंच पर आने में सक्षम बनाया जा सके और यदि जब कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के आदेश के तहत प्रदान किए गए आरक्षण और अन्य लाभों को प्राप्त करके संविधान के उक्त लाभकारी प्रावधान का अनुचित लाभ उठाता है, हालांकि वह इसका हकदार नहीं है, तो वह न केवल समाज के साथ धोखाधड़ी करता है, बल्कि वास्तव में संविधान के साथ भी धोखाधड़ी करता है। इसलिए, जब किसी ऐसे व्यक्ति को प्रमाणपत्र दिया जाता है जो अन्यथा उसका हकदार नहीं है, तो यह तर्क देना पूरी तरह से गलत है कि राज्य इस मामले में असहाय दर्शक बना रहेगा। (114-एफ-एच)

महाराष्ट्र राज्य बनाम मिलिंद एवं अन्य, {2001} 1 एससीसी 4, संदर्भित।

4.1. उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण सही नहीं है, क्योंकि वह इस आधार पर आगे बढ़ा कि एक बार जब प्रतिवादी का उपनाम जनजाति के नाम से मेल खाता है, जिसका उल्लेख 1976 के आदेश से जुड़ी अनुसूची की एक या अन्य प्रविष्टियों

में मिलता है, तो वही होना चाहिए इसे पवित्र माना जाना चाहिए और उक्त प्रमाणपत्र की सत्यता के संबंध में किसी भी समिति द्वारा कोई जांच नहीं की जा सकती है। उच्च न्यायालय की टिप्पणियाँ और निर्देश, न केवल न्यायालय के निर्णयों के विपरीत थे, बल्कि जमीनी हकीकत से भी कम थे। {115-ए-बी}

राम सरन बनाम आई.जी. पुलिस, सी.आर.पी.एफ और अन्य, (2006) 2 स्केल 131; राज्य कर्मचारी बीमा निगम बनाम डिस्टिलरीज और कॅमिकल मजदूर यूनियन और अन्य, (2006) 7 स्केल 171 और संदीप सुभाष पराते बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2006) 8 स्केल 503, पर भरोसा किया गया।

दादाजी उर्फ दीना बनाम सुखदेवबाबू और अन्य, (1980) 1 एससीसी 621, को अयोग्य माना गया।

पालघाट जिला थंडन सामुदायिक संरक्षण समिति और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य, (1994) 1 एससीसी 359; गायत्रीलक्ष्मी बापुराव नागपुरे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (1996), 3 एससीसी 685; बैंक ऑफ इंडिया और अन्य. बनाम अविनाश डी. मांडीविकर और अन्य, (2005) 7 एससीसी 690 और महाराष्ट्र राज्य व अन्य मना आदिम जमाल मंडल (2006) 4 एससीसी 98, संदर्भित।

4.2. हालांकि उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा दायर रिट याचिकाओं को अनुमति दे दी, लेकिन जिन साक्ष्यों पर समिति ने भरोसा किया, उनका बिलकुल भी विश्लेषण नहीं किया गया। यह मुख्यतः इस आधार पर आगे बढ़ा कि किसी भी पूछताछ की अनुमति नहीं थी। हाईकोर्ट को मामले की मेरिट पर नए सिरे से विचार करना चाहिए।

(118-एफ,जी)

5. जब मामला निर्णय के लिए लंबित था, इस न्यायालय को उत्तरदाताओं से पत्र प्राप्त हुए, जिसमें न्यायालय से मामले को वापस उच्च न्यायालय में न भेजने

का आग्रह किया गया। ये पत्र संभवतः सुनवाई के दौरान की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए जारी किए गए थे कि उच्च न्यायालय ने मामलों की योग्यता पर ध्यान नहीं दिया था। जब मामला निर्णय के लिए लंबित थे तब न्यायाधीशों को पत्र लिखने की ऐसी प्रथा निंदनीय है। (119-ए-बी)

सिविल अपीलिय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 789/2005

बॉम्बे, नागपुर खंडपीठ नागपुर के उच्च न्यायालय की रिट याचिका संख्या 2745/1998 के अंतिम निर्णय दिनांक 28.7.2003 से।

के साथ

सी.ए. संख्या 5146, 5458 और 5459/2005

एस.के. ढोलकिया, एस.एस. शिंदे, मुक्ति चौधरी और रवींद्र केशवराव
अपीलकर्ताओं के वकील थे।

अरविंद बनाम सावंत, संजय बनाम खरदे, चंदना राममूर्ति, सुधांशु चौधरी, नरेश कुमार, मनीष पिटाले, चंद्र शेखर आश्री, वी.बी. जोशी, आई. इंगले, रमाकांत, आर.एस. हेज, सावित्री पांडे, चंद्र प्रकाश, राहुल त्यागी, पी.पी. सिंह, डी.एम. नागोल्कर और वी.एन. रघुपति, उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय एस.बी. सिन्हा, जे. द्वारा सुनाया गया।

जाति जांच समिति का क्षेत्राधिकार और उसकी सीमा इन अपीलों में हमारे विचार के लिए आती है, जो बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा रिट में पारित दिनांक 28.07.2003, 04.10.2004 और 24.11.2004 के निर्णयों और आदेशों से उत्पन्न होती हैं। याचिका संख्या क्रमशः 1988 की 2745, 1996 की 3153 और 2001 की 3737.

हालाँकि, हम 2005 के सिविल अपील संख्या 789 से मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स को देख सकते हैं।

प्रतिवादी को ठाकुर समुदाय से संबंधित होने के कारण अनुसूचित जनजाति का सदस्य कहा जाता है, जैसा कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976 के संदर्भ में जारी महाराष्ट्र राज्य से संबंधित अनुसूचित जनजातियों की सूची की प्रविष्टि 44 के तहत परिकल्पित है। एक प्रमाण पत्र यह दर्शाता है कि वह उपरोक्त जनजाति समुदाय से है, उसे जारी किया गया था। प्रतिवादी ने ऐसे प्रमाणपत्र के अनुसरण में या उसके आधार पर विभिन्न संस्थानों में नियुक्तियाँ और/या प्रवेश प्राप्त किए। हालाँकि, कुमारी माधुरी पाटिल और अन्य मामले में इस न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में गठित जांच समिति बनाम अतिरिक्त. आयुक्त, आदिवासी विकास और अन्य, (1994) 6 एससीसी 241, ने राय दी कि वह उक्त समुदाय से नहीं हैं और वास्तव में क्षत्रिय ठाकुर जाति से हैं, जिसके बाद उनका अनुसूचित जनजाति प्रमाण पत्र रद्द कर दिया गया था।

इसके विरुद्ध अपर आयुक्त, के समक्ष अपील की गई। आदिवासी विकास, नागपुर को भी बर्खास्त कर दिया गया।

अपीलीय प्राधिकरण और जाति जांच समिति द्वारा पारित उक्त आदेशों से दुखी और असंतुष्ट होकर, बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं दायर की गईं। उक्त आदेशों के क्रियान्वयन पर अंतरिम रोक लगाए जाने के बाद भी प्रतिवादी अपनी सेवा में बना रहेगा।

उच्च न्यायालय की खंडपीठ के विद्वान न्यायाधीशों ने अलग-अलग निर्णय दिये। खार्च.जे. ने आयोजित किया :

“... इसलिए, हम मानते हैं कि जाति जांच समिति के साथ-साथ आयुक्त भी उचित नहीं थे और, कानून के मामले में, इस प्रश्न की

जांच करने की कोई क्षमता नहीं थी कि याचिकाकर्ता क्षत्रिय वर्ग की ठाकुर जाति का है, हालांकि कोचर.जे. ने अपने अलग लेकिन सहमत निर्णय में राय व्यक्त की।

2.1. हालांकि, इस तरह की जांच के मानदंड क्या हैं, यह हमारे सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। यह किसी सिविल न्यायालय में किसी सिविल मुकदमे की सिविल सुनवाई में भाग नहीं ले सकता है। हालांकि, इसे सुनवाई और निर्णय के मामले में साक्ष्य के कानून और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना होगा। जांच में मौखिक साक्ष्य के बजाय दस्तावेजी साक्ष्य पर अधिक जोर और विश्वसनीयता होनी चाहिए। यदि राष्ट्रपति के पूर्व आदेशों से, जाति प्रमाण पत्र, स्कूल छोड़ने का प्रमाण पत्र जैसे दस्तावेजी साक्ष्य की प्रधानता है, तो उन्हें बिना किसी सवाल और जांच के स्वीकार किया जाना चाहिए। हालाँकि, राष्ट्रपति के बाद के आदेशों के दस्तावेज को खारिज नहीं किया जा सकता है केवल इस आधार पर कि यह राष्ट्रपति काल के बाद का है। यह बेतुका और हास्यास्पद होगा। समिति यह मानकर आगे नहीं बढ़ सकती कि ऐसे सभी दस्तावेज आरक्षण लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से गढ़े गए हैं। ऐसे मामलों में जाति के दावे को स्थापित करने के लिए कोई अन्य सबूत नहीं हो सकता। दावा किया गया है कि किसी की जाति दिखाने के लिए कोई रक्त समूह या डीएनए परीक्षण नहीं है। हम यह नहीं मान सकते कि सभी माता-पिता और सभी बच्चे अपनी जाति से लाभ कमाने के लिए हर समय झूठ बोलते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है, कुछ लोग ऐसे लाभों को छीनने के लिए गलत रिकॉर्ड बना सकते

हैं, लेकिन हमें हर समय सार्वभौमिक रूप से यह सूचित करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकते कि प्रत्येक दस्तावेज एक मनगढ़ंत और फर्जी दस्तावेज है। आमतौर पर और मुख्य रूप से कोई भी उच्च जाति का व्यक्ति आरक्षित श्रेणी की जाति से संबंधित होने का दावा नहीं करेगा। ऐसा कोई उदाहरण नहीं सुना गया है कि किसी ब्राह्मण या जैन या क्षत्रिय ने झूठा प्रकरण दर्ज कराया हो कि वह एस.सी./एस.टी. का है। क्लास टॉप को उन श्रेणियों का लाभ मिलता है। हालाँकि, इस तरह का मुकदमा उन लोगों के बीच होता है जिनकी जाति-जनजाति में परस्पर समानता होती है। हल्बा और हल्बा कोष्टी, ठाकुर-का-मा आदि कोली और महादेव कोली, मैना गोंड मना आदि किसी भी मामले में, ये सभी जातियां-जनजातियां अमीरों के एक वर्ग से संबंधित हैं और वे अपनी आजीविका के लिए कुछ लाभ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं "

विद्वान न्यायाधीश ने इसके अलावा जांच समिति की तथाकथित खराबी पर भी टिप्पणी की और निर्देश दिया कि इसे केवल दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर ही संतुष्ट होना चाहिए और निष्कर्ष निकालने के लिए कोई मौखिक साक्ष्य स्वीकार्य नहीं होगा।

“(1) राष्ट्रपति के आदेशों की अनुसूचियों में जातियों-जनजातियों के संबंध में प्रविष्टियों के संबंध में किसी भी जांच की अनुमति नहीं है। हमें उन्हें वैसे ही लेना होगा जैसे वे हैं, जैसा कि मिलिंद कैटवेयर के मामले में अनिवार्य है, संपूर्ण में कुछ भी जोड़ने या घटाने के बिना।

(2) दावेदार को आरक्षण नीति का लाभ प्राप्त करने में सक्षम होने के लिए उसका किसी विशेष जाति-जनजाति से संबंधित होने का दावा साबित करना होगा।

(3) दावेदार को उचित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करके अपना अधिकार स्थापित करना होगा।

(4) दावेदार को प्रत्यक्ष रूप से गवाह बॉक्स में प्रवेश करना होगा और शपथ लेनी होगी।”

महाराष्ट्र अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, विमुक्त जाति, घुमंतू जनजाति के उद्देश्य और उद्देश्य का उल्लेख करते हुए,

न्यायाधीश के रूप में, हमें ऐसी टिप्पणियाँ करने से पहले संयम बरतना चाहिए, जिनका दूरगामी प्रभाव हो। हमारी राय में, ऐसे निर्देश उस मामले में जारी नहीं किए जा सकते थे, जहां राज्य को अपनी टिप्पणी देने के लिए नहीं बुलाया गया था। जाति जांच समितियों की कार्यप्रणाली के संबंध में कोई अनुभवजन्य अध्ययन नहीं किया गया। इस प्रकार, रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री के बिना इस तरह की व्यापक टिप्पणियाँ अनुचित थीं। वे काफी हद तक इस न्यायालय द्वारा माधुरी पाटिल (सुप्रा) में जारी निर्देशों के विपरीत और असंगत हैं। हम मामले के इस पहलू पर थोड़ी देर बाद चर्चा करेंगे।

विचार के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या जाति जांच समिति अधिकारियों द्वारा दिए गए प्रमाण पत्र की वैधता या अन्यथा पर की जा सकती है। उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के एक निर्णय पालघाट जिला थंडन सामुदायिक संरक्षण समिति और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य, में पर भरोसा किया। (1994) 1 एससीसी 359 और इस न्यायालय के कुछ अन्य निर्णय।

हम, सम्मान के साथ, उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हैं कि किसी भी जांच की बिल्कुल भी अनुमति नहीं है, एक बार जब यह पाया जाता है कि संबंधित व्यक्ति जिसके पक्ष में एक प्रमाण पत्र दिया गया था उसे अनुसूचित जनजाति के रूप में अधिसूचित किया गया था।

जिस उद्देश्य और उद्देश्य के लिए ऐसी ई-समितियों का गठन किया जाता है, उससे संबंधित प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष बड़ी संख्या में मामलों में विचार के लिए आए।

कुमारी माधुरी पाट (सुप्रा) में इस न्यायालय ने सामाजिक स्थिति प्रमाण पत्र जारी करने की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करने और उनकी जांच और अनुमोदन के लिए ऐसी जाति जांच समितियों के गठन का निर्देश दिया। इस न्यायालय ने अवलोकन किया।

“..चूँकि अनुसूचित जनजातियाँ नागरिकों का एक खानाबदोश वर्ग है जिनका निवास स्थान भौगोलिक रूप से पहाड़ी क्षेत्र या जंगल हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा से दूर रहते हैं। इसलिए, हमारे संविधान के तहत राज्य को उनके वैज्ञानिक स्वभाव के विकास, शैक्षिक उन्नति और आर्थिक सुधार के लिए सुविधाएँ और अवसर प्रदान करने का दायित्व दिया गया है, ताकि वे उत्कृष्टता समानता का दर्जा हासिल कर सकें और सम्मान के साथ जी सकें। शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश और रोजगार में आरक्षण अन्य आर्थिया उपायों के अलावा जनजातियों को सामाजिक और आर्थिक न्याय प्रदान करने वाली प्रमुख राज्य नीतियां हैं। इसलिए, राज्य की नीति के कारण जनजातियाँ, अन्य पिछड़ा वर्ग और विशेष

पिछड़ा वर्ग (जारी करने और सत्यापन का विनियमन) जाति प्रमाण पत्र अधिनियम, 2000, में यह निर्देशित किया गया था:

(ए) रोजगार या शिक्षा के सबसे मूल्यवान अधिकार से जुड़े विषय के महत्व को ध्यान में रखते हुए, जो पूरी तरह से जाति-जनजाति प्रमाणपत्रों पर निर्भर है, जाति-जनजाति जांच का यह काम प्रशिक्षित न्यायिक अधिकारियों को सौंपा जाना चाहिए, न कि नौकरशाहों को जो सही परिप्रेक्ष्य में निर्णय लेने और साक्ष्य की सराहना करने के लिए कानूनी रूप से प्रशिक्षित नहीं हैं। ऐसी समितियों में जिला न्यायाधीश संवर्ग के न्यायिक अधिकारी शामिल होने चाहिए, इससे कम नहीं। हमारे पास बड़ी संख्या में सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी हैं जिन्हें यह दायित्व सौंपा जा सकता है।

(बी) सभी जांच समितियों को नियंत्रण और पर्यवेक्षण तथा कला के दायरे में लाया जाना चाहिए। भारत के संविधान की धारा 235. उनकी भर्तियाँ और नियुक्तियाँ अन्य न्यायिक पदों की तरह उच्च न्यायालय के अधीन होनी चाहिए।”

यह स्पष्ट नहीं है कि खार्चे, जे. कोचर, जे. के उपरोक्त निर्देशों से सहमत थे या नहीं।

हालाँकि, हम विद्वान न्यायाधीशों के संबंध की गई टिप्पणियों और जारी किये गए निर्देशों के संबंध प्रति अपनी अस्वीकृति दर्ज करते हैं।

जाति जांच समिति एक अर्ध-न्यायिक निकाय है। इसकी स्थापना एक विशेष उद्देश्य के लिए की गई है। यह सामाजिक और संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है। इसका गठन संविधान के साथ धोखाधड़ी को रोकने के लिए किया गया है। यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों से बाध्य नहीं हो सकता है, लेकिन वरिष्ठ

न्यायालयों के लिए यह निर्देश जारी करना सही नहीं होगा कि उन्हें साक्ष्य की विवेचना कैसे करनी चाहिए। किसी मामले में अर्ध-न्यायिक निकाय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य को केवल दस्तावेजी साक्ष्य स्वीकार करने तक सीमित नहीं किया जा सकता है। इसके लिए मौखिक साक्ष्य लेना आवश्यक हो सकता है।

इसके अलावा, पेश किए जाने वाले साक्ष्य की प्रकृति हर मामले में अलग-अलग होगी। साक्ष्य प्रस्तुत करने के किसी पक्ष के अधिकारों में कटौती नहीं की जा सकती। यह कहना एक बात है कि एक अर्ध-न्यायिक निकाय को कानून में उसके सामने पेश किए गए सबूतों की विवेचना कैसे करनी चाहिए, लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि उसे मौखिक साक्ष्य पेश करने की बिल्कुल भी अनुमति नहीं देनी चाहिए।

इसके अलावा यह सुझाव देना भी उचित नहीं होगा कि ऐसे सभी निकायों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 235 के दायरे में लाया जाना चाहिए या केवल न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

आरक्षण, शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश का विशेष अधिकार या राज्य के अधीन किसी कार्यालय या पद पर रोजगार का विशेष अधिकार आदि दिया गया है। निर्धारित कोटा के लिए जनजातियों से संबंधित नागरिकों द्वारा ऐसे विशेष अधिकारों का लाभ उठाने के लिए, राष्ट्रपति ने एक अधिसूचना द्वारा अनुसूचित जनजातियों या जनजातीय समुदायों या जनजातियों या जनजातीय समुदायों के कुछ हिस्सों या समूहों को निर्दिष्ट किया ताकि वे ऐसे विशिष्ट अधिकारों का लाभ उठाने के हकदार बन सकें। भारत संघ और राज्य सरकारों ने प्रक्रिया निर्धारित की है और उचित सत्यापन के बाद सामाजिक

स्थिति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए राजपत्रित संवर्ग के राजस्व अधिकारियों को कर्तव्य और जिम्मेदारी सौंपी है...”

न्यायालय ने माना कि महादेव कोली कोली नहीं हैं। इसे स्कूल प्राधिकारियों द्वारा जारी प्रमाणपत्रों के साथ-साथ समिति और अपीलीय प्राधिकारी के निष्कर्षों को भी शामिल करते हुए मामले की योग्यता में शामिल किया गया था।

“..अतिरिक्त आयुक्त ने भी, सभी भौतिक विवरणों पर बारीकी से गौर किया है और पाया है कि जब समाज के एक वर्ग ने खुद को जनजातियों के रूप में दावा करना शुरू कर दिया है और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित रियायतें और सुविधाएं अर्जित करने की कोशिश की है, तो चालें आम हैं और इसलिए कानूनी और जातीय आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए। नकली जनजातियाँ वास्तविक आदिवासियों के लिए खतरा बन गई हैं और वर्तमान मामला वास्तविक दावेदारों को दिए गए आरक्षण के लाभों को नकली जनजातियों द्वारा छिन लिए जाने का एक विशिष्ट उदाहरण है। सबूतों पर विचार करते हुए, जैसा कि पहले कहा गया है कि समिति और अपीलीय प्राधिकारी दोनों ने तथ्य के रूप में पाया कि अपीलकर्ता संवैधानिक लाभ के हकदार 'महादेव कोली' जनजाति नहीं हैं। सुभाष गणपतराव कबाड़े मामले में, डिवीजन बेंच का दृष्टिकोण पारंपरिक ढांचे में कानूनी प्रतीत होता है, जो मानवशास्त्रीय और नृवंशविज्ञान संबंधी दृष्टिकोणों से पूरी तरह से बेखबर है और जांच समिति और अतिरिक्त आयुक्त द्वारा उचित रूप से अपनाए गए दृष्टिकोण पर अनुचित सख्ती के साथ अपने निष्कर्ष दर्ज किये हैं अतिरिक्त आयुक्त का “(मजाकिया)” “स्पष्ट रूप से गलत” और अजीबोगरीब तर्क है।

माना जाता है कि याचिकाकर्ता ने, संविधान से पहले के दिनों में, सेवा पुस्तिका के साथ-साथ स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र में खुद को हिंदू कोली के रूप में वर्णित किया था। उच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि वे पिछड़े वर्ग थे, लेकिन गलत आधार पर आगे बढ़े कि महादेव कोली को पहली बार 1976 के संशोधन अधिनियम के माध्यम से पेश किया गया था और इसलिए, वे लाभ के हकदार वास्तविक अनुसूचित जनजाति थे। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हम यह मानने से नहीं रह सकते कि उच्च न्यायालय का तर्क पूरी तरह से विकृत और अस्थिर है।”

महाराष्ट्र राज्य बनाम मिलिंद और अन्य (2001) 1 एससीसी 4 में यह माना गया कि अनुसूचित जनजाति आदेश में हल्बा-कोष्टी का उल्लेख नहीं होने के कारण, उन्हें हल्बा का हिस्सा नहीं माना गया, यह बताते हुए:

“ इसमें कोई संदेह नहीं है, यह सच है, “हल्बा-कोष्टी से संबंधित विवाद के बारे में अपीलकर्ता का रुख समय-समय पर बदलता रहा है, लेकिन हमने प्रश्न 1 पर राज्य सरकार द्वारा जारी परिपत्रों/संकल्पों/निर्देशों को ध्यान में रखा है। समय-समय पर कभी-कभी केंद्र सरकार द्वारा जारी किए गए निर्देशों के विपरीत, कोई परिणाम नहीं होता है। उन्हें आसानी से नजरअंदाज किया जा सकता है क्योंकि राज्य सरकार के पास अनुसूचित जनजाति के आदेश में संशोधन या परिवर्तन करने का न तो अधिकार है और न ही क्षमता। ऐसा प्रतीत होता है कि इस तरह के दर्जे का दावा करने के हकदार नहीं व्यक्तियों द्वारा किए जा रहे झूठे और तुच्छ दावों को ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने 21.4.1969 से 1982 की

अवधि के बीच पत्र जारी किए और निर्देश जारी किए कि जारी करने से पहले सख्त जांच होनी चाहिए अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति का दावा करने वाले व्यक्तियों को जाति प्रमाण पत्र जारी करने से पहले पूछताछ, माता-पिता की जाति की कड़ी जांच एक जांच बिंदु के रूप में की जानी चाहिए।”

इसलिए, उक्त निर्णय इस प्रस्ताव के लिए एक अधिकार है कि केवल इसलिए कि किसी व्यक्ति द्वारा यह दावा किया जाता है कि वह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) के प्रावधानों के संदर्भ में अनुसूचित जनजाति के रूप में अधिसूचित जनजाति का सदस्य है अधिनियम, 1976, पूर्ण रूप से किसी भी प्रतिरक्षा का दावा नहीं किया जा सकता है।

संविधान निर्माताओं ने नागरिकों के बीच समानता पर जोर दिया। भारत का संविधान सुरक्षात्मक भेदभाव और आरक्षण का प्रावधान करता है ताकि वंचित समूह को अगड़े समुदाय के समान मंच पर आने में सक्षम बनाया जा सके और जब कोई व्यक्ति राष्ट्रपति के आदेश के तहत प्रदान किए गए आरक्षण और अन्य लाभों को प्राप्त करके संविधान के उक्त लाभकारी प्रावधान का अनुचित लाभ उठाता है, हालांकि वह इसका हकदार नहीं है, तो वह न केवल समाज के साथ धोखाधड़ी करता है, बल्कि वास्तव में और संविधान के साथ धोखाधड़ी करता है। इसलिए, जब किसी ऐसे व्यक्ति को प्रमाणपत्र दिया जाता है जो अन्यथा उसका हकदार नहीं है, तो यह तर्क देना पूरी तरह से गलत है कि राज्य इस मामले में असहाय दर्शक बना रहेगा।

हम, सम्मानपूर्वक, उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण की सराहना करने में विफल रहते हैं, क्योंकि यह इस आधार पर आगे बढ़ा कि एक बार प्रतिवादी का उपनाम जनजाति के नाम के साथ मेल खाता था, जिसका उल्लेख इसमें मिलता है। 1976

के आदेश के साथ संलग्न अनुसूची की एक या अन्य प्रविष्टियों को पवित्र माना जाना चाहिए और उक्त प्रमाण पत्र की शुद्धता के संबंध में किसी भी समिति द्वारा कोई जांच नहीं की जा सकती है। हमारी सुविचारित राय में उच्च न्यायालय की टिप्पणियाँ और निर्देश न केवल न्यायालय के निर्णयों के विपरीत थे, बल्कि जमीनी हकीकत से भी कम थे।

विद्वान वरिष्ठ वकील, श्री अरविंद सावंत, पालघाट जिला थंडन सामुदायिक संरक्षण समिति (सुप्रा) और उसके विशेष पैराग्राफ 18 और 19 में इस न्यायालय के फैसले पर मजबूत भरोसा रखेंगे, जो इस प्रकार है:

“18. ये निर्णयों इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ते हैं कि अनुसूचित जाति आदेश को उसी रूप में लागू किया जाना चाहिए, जैसा वह है और यह निर्धारित करने के लिए कोई जांच नहीं की जा सकती है या सबूत नहीं दिया जा सकता है कि कोई विशेष समुदाय इसके भीतर या बाहर आता है या नहीं। अनुसूचित जाति आदेश के स्पष्ट प्रभाव को संशोधित करने की कोई भी कार्यवाही, अनुच्छेद 341 द्वारा विचार किये जाने के अलावा, वैध नहीं है।

19. मौजूदा मामले में थंडन समुदाय को अनुसूचित जाति आदेश में सूचीबद्ध किया गया है, जैसा कि अब है, यह राज्य सरकार के लिए या वास्तव में, इस न्यायालय के लिए खुला नहीं है कि वह यह निर्धारित करने के लिए जांच शुरू करें कि क्या एझावा का एक वर्ग थियास का एक वर्ग है। राज्य के मालबार क्षेत्र में थंडन कहा जाता था, जिसे अनुसूचित जाति आदेश के लाभ से बाहर रखा गया था।”

उक्त निर्णय को उसमें प्राप्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए। निर्विवाद रूप से, थानदान अनुसूचित जनजाति के सदस्य हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 341 के संदर्भ में, जैसा कि केरल राज्य पर लागू होता है, संविधान (अनुसूचित जाति) आदेश, 1950 के तहत की गई एक प्रविष्टि में आइटम नंबर 61 के रूप में थंडन को अनुसूचित जनजाति के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। राज्य ने वर्ष 1984 में एक आदेश जारी करके उक्त आदेश को संशोधित करने की मांग की:

“...15 अक्टूबर, 1984 को केरल सरकार ने एक आदेश जारी किया जिसमें कहा गया था कि, मामले के सभी पहलुओं पर पुनर्विचार करने के बाद, 1979 के आदेश को रद्द कर दिया गया था और “पूरे केरल में थानवासियों को अनुसूचित जाति के सदस्यों के रूप में माना जाएगा जैसा कि अनुसूचित की सूची में मौजूद है”

और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976 के अनुसार इस राज्य की अनुसूचित जातियों की सूची और तदनुसार जारी सामुदायिक प्रमाण पत्र.....”

उक्त आदेश को एक अन्य आदेश दिनांक 24.11.1987 द्वारा संशोधित किया गया था, जिसका पढ़ा गया ऑपरेटिव भाग इस प्रकार है:

“सरकार ने इस मामले पर फिर से इसके सभी पहलुओं पर विचार किया है और दूसरे पेपर के रूप में ऊपर पढ़े गए सरकारी आदेश में आंशिक संशोधन करते हुए सरकार अब आदेश देती है कि पूरे केरल में थंडन जाति से संबंधित व्यक्तियों को अनुसूचित जाति की सूची में मौजूद अनुसूचित जाति के सदस्यों के रूप में माना जाएगा। इस राज्य की अनुसूचित जातियां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम,

1976 के अनुसार है। ऐसे जाति प्रमाण पत्र जारी करते समय राजस्व अधिकारियों को उचित सत्यापन के बाद स्पष्ट करना चाहिए कि संबंधित व्यक्ति थंडन जाति का है, न कि एझावा/थिय्या का।”

इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए जो प्रश्न उठा वह यह था कि क्या मालाबार क्षेत्र में थंडन नाम के या बुलाए गए व्यक्तियों को 1976 के आदेश के तहत कवर करने का इरादा था। इस न्यायालय के निष्कर्ष, जिसे हमने यहां पहले देखा है, को उसमें प्राप्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स की कसौटी पर आंका जाना चाहिए। ये हुआ था:

“21. उच्च न्यायालय द्वारा अपील के तहत आदेश में जांच का आदेश दिया गया था कि “यह पता लगाने के लिए कि क्या पालघाट जिले में तत्कालीन चित्तूर तालुक के अलावा अन्य क्षेत्रों में और पूर्ववर्ती मालाबार जिले में किसी अन्य स्थान पर थंडन नामक एक समुदाय था, जो एझावा से अलग था।” “इस न्यायालय द्वारा 16 जनवरी, 1989 को पारित एक अंतरिम आदेश के आधार पर निष्कर्ष पर पहुंचा है। जो रिपोर्ट बनाई गई है, उसकी सत्यता की जांच करना राज्य सरकार या इस न्यायालय का काम नहीं है। उस पर या रिपोर्ट का उपयोग, वास्तव में, अनुसूचित जाति आदेश को संशोधित करने के लिए किया गया है। राज्य सरकार, यदि उचित समझे, तो रिपोर्ट को उचित प्राधिकारी को अग्रेषित करने के लिए विचार करें कि क्या अनुसूचित जाति आदेश की आवश्यकता है। जब तक अनुसूचित जाति आदेश में संशोधन नहीं किया जाता है, तब तक इसका पालन किया जाना चाहिए और राज्य सरकार को पूरे केरल में थंडनों को

अनुसूचित जाति के सदस्यों के रूप में मानना चाहिए और तदनुसार सामुदायिक प्रमाण पत्र जारी करना चाहिए।”

यह अदालत उस मामले की सुनवाई नहीं कर रही थी, जहां उसे गलत तरीके से प्रमाणपत्र दिया गया था, हालांकि वह उसका हकदार नहीं था।

मिलिंद (सुप्रा) में इस न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष यह प्रश्न फिर से विचार के लिए आया है, जिसमें बिना किसी अनिश्चित शर्तों के यह माना गया कि राष्ट्रपति के रूप में राज्यों के राज्यपालों के माध्यम से राज्यों से परामर्श करने का लाभ था, आगे कोई पूछताछ नहीं की गई थी। आदेश में प्रविष्टियों की शुद्धता के संबंध में कानून में अनुमति थी। न्यायालय ने आगे कहा:

“2. अनुसूचित जनजाति आदेश को वैसे ही पढ़ा जाना चाहिए, जैसे वह है। यह कहना भी स्वीकार्य नहीं है कि एक जनजाति, उप-जनजाति, किसी जनजाति या आदिवासी समुदाय का हिस्सा या समूह अनुसूचित जनजाति आदेश में उल्लिखित का पर्याय है। यदि उनका इसमें विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है।”

महाराष्ट्र राज्य और अन्य बनाम मन आदिम जमात मंडल, (2006), 4 एससीसी 98 पर भरोसा रखा गया। उसमें विचार के लिए जो प्रश्न उठा, वह यह था कि क्या दादाजी उर्फ दीना बनाम सुखदेव बाबू और अन्य, (1980), 1 एससीसी 621 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले को खारिज कर दिया गया था। मिलिंद (सुप्रा) में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ द्वारा ऐसा ही माना गया। उक्त निर्णय का किसी भी प्रकार से कोई अनुप्रयोग नहीं है।

गायत्री लक्ष्मी बापुराव नागपुरे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (1996), 3 एससीसी 685 में भी भरोसा रखा गया है, जिसमें यह न्यायालय संदर्भित कर रहा है, उसमें प्राप्त तथ्यात्मक स्थिति पर माधुरी पाटिल (सुप्रा) से कहा:

“17. उपरोक्त परीक्षण को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, हम संतुष्ट हैं कि समिति अपने समक्ष रखी गई। सभी प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार करने में विफल रही और एक महत्वपूर्ण दस्तावेज “क्रमांक संख्या 9” पर अपना दिमाग नहीं लगाया, जिसके कारण समिति को अंततः नुकसान उठाना पड़ा। अपीलकर्ता के खिलाफ निष्कर्ष दर्ज करना पड़ा। वास्तविक उम्मीदवार को जाति प्रमाण पत्र देने से गलत तरीके से इनकार करने से, वह संविधान द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकारों से वंचित हो जाएगा। इसलिए अधिक बड़ा जाति प्रमाण पत्र के लिए किसी भी दावे को स्वीकार करने या अस्वीकार करने से पहले सावधानी बरतनी चाहिए।

18. उच्च न्यायालय ने अपने समक्ष रखे गए दस्तावेजों के संभावित मूल्य की सराहना किए बिना, दूसरी प्रतिवादी समिति द्वारा पहुंचे निष्कर्षों को स्वीकार करके अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका को खारिज कर दिया है। निस्संदेह, इस प्रकार के मामलों में, भारी बोझ उस आवेदक पर पड़ता है, जो ऐसा प्रमाणपत्र चाहता है। इसका मतलब यह नहीं है कि जाति प्रमाण पत्र जारी करने के दावे की सत्यता या अन्यथा का पता लगाने में अधिकारियों की कोई भूमिका नहीं है। हमारा विचार है कि संबंधित अधिकारियों को भी समिति को सही निर्णय पर पहुंचने में सहायता करने में भूमिका निभानी चाहिए। इस मामले में, अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के अलावा, संबंधित अधिकारियों द्वारा किसी अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है।”

इसलिए, उक्त निर्णय इस प्रस्ताव का भी अधिकार है कि समिति इस सवाल पर विचार कर सकती है कि जाति प्रमाण पत्र सही तरीके से जारी किया गया है या नहीं। जाति प्रमाण पत्र जारी करने के दावे की सत्यता या अन्यथा का पता लगाने में संबंधित अधिकारियों की भी कुछ भूमिका पाई गई।

हम देख सकते हैं कि बैंक ऑफ इंडिया और अन्य बनाम अविनाश डी. मांडीविकर और अन्य, (2005), 7 एससीसी 690, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीश पीठ ने राय दी कि संबंधित कर्मचारी ने नियुक्ति प्राप्त करने के लिए धोखाधड़ी की है, उसे इसका लाभ प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। "राम सरन बनाम आई.जी. भी देखें। पुलिस, सीआरपीएफ और अन्य की। (2006) 2 स्केल 131, कर्मचारी राज्य बीमा निगम बनाम डिस्टिलरीज और केमिकल मजदूर संघ और अन्य, (2006) 7 स्केल 171 और संदीप सुभाष पराते बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2006) 8 स्केल 503।

जबकि प्रत्येक मामले में दी गई अंतिम राहत के संबंध में निर्णय और फैसले होते हैं, हम देखते हैं कि कोई भी प्राधिकारी ऐसा कानून नहीं बना रहा है कि किसी भी परिस्थिति में जांच कानून में अस्वीकार्य नहीं होगी।

हमारे सामने ऐसे मामलों पर बहस करने का गंभीर प्रयास किया जा चुका है।

विद्वान वरिष्ठ वकील ने प्रयास किया कि हमें मामले की योग्यता पर जाना चाहिए और जाति जांच समिति के आदेश को रद्द करना चाहिए, जैसा कि उच्च न्यायालय ने किया है। हम ऐसा करने से इंकार करते हैं। हालांकि उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा दायर रिट याचिकाओं को अनुमति दे दी, लेकिन समिति द्वारा भरोसा किए गए सबूतों का बिल्कुल भी विश्लेषण नहीं किया। जैसा कि यहां पहले

देखा गया, यह मुख्य रूप से इस आधार पर आगे बढ़ा कि कोई पूछताछ की अनुमति नहीं थी।

इसलिए, हमारी राय है कि उच्च न्यायालय को मामले की योग्यता पर नए सिरे से विचार करना चाहिए। हालाँकि, हम उच्च न्यायालय से अनुरोध करेंगे कि वह मामलों को यथासंभव शीघ्रता से और अधिमानतः इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर निपटाने की वांछनीयता पर विचार करें। हमें यह देखना चाहिए कि हम मामले की योग्यता पर नहीं गए हैं और इस प्रकार, बकाया वेतन के सवाल सहित पार्टियों के सभी विवाद खुले रहेंगे। अपीलें स्वीकार की जाती हैं।

जब मामले का निर्णय लंबित था, हमें उत्तरदाताओं से पत्र प्राप्त हुए जिसमें हमसे मामले को वापस उच्च न्यायालय में न भेजने का आग्रह किया गया। ये पत्र संभवतः सुनवाई के दौरान हमारे द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए जारी किए गए थे कि उच्च न्यायालय ने मामलों की योग्यता पर ध्यान नहीं दिया था। जब मामले पर निर्णय लंबित हो, तो हम न्यायाधीशों को पत्र लिखने की प्रथा की निंदा करते हैं। एक समय पर, हमने प्रतिवादियों के खिलाफ अदालत की अवमानना अधिनियम, 1971 के तहत कार्यवाही शुरू करने के बारे में सोचा था, लेकिन हम ऐसा करने से खुद को रोकते हैं। हालाँकि, हमारी राय है कि प्रतिवादियों को अपीलकर्ताओं की लागत वहन और भुगतान करनी चाहिए जो प्रत्येक मामले में 25,000/- रुपये (केवल पच्चीस हजार रुपये) है। हम तदनुसार निर्देश देते हैं।

सिविल अपील संख्या 5459/2005:

विद्वान वरिष्ठ वकील श्री अरविंद वी. सावंत का कहना है कि चूंकि पूरा मामला उच्च न्यायालय को भेजा जा रहा है, इसलिए वह इस अपील पर जोर नहीं

देंगे, इसमें उठाए गए तर्कों को खुला छोड़ देंगे। अपील खारिज की जाती है। कोई लागत नहीं।

डी.जी.

अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी यशवंत आमेरिया (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण:- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।